जीवन ज्योति

—

काशीराम चावला

॥ ओ३म् ॥

जीवन ज्योति

लेखक :
श्री कांशी राम 'चावला'
(चार भाषाओं में २४० पुस्तकों के रचयिता)

स्वर्गीय श्रीमती सुलखनी देवी महाजन

प्रकाशक
श्रीमती सुलखनी देवी महाजन धर्मार्थ ट्रस्ट
एम०/१०, लाजपत नगर-३, नई दिल्ली-२४

एक शब्द

मनुष्य का जीवन एक ज्योति के तुल्य है। इस ज्योति को उज्ज्वल बनाना ही मनुष्य-जीवन का ध्येय है। मनुष्य के इस संसार में तीन बड़े-बड़े सम्बन्ध हैं। एक तो अपने आप के साथ, दूसरा अन्य प्राणियों के साथ और तीसरा अपने प्रभु के साथ। जो मनुष्य इन सम्बन्धों को भली भांति समझ कर इनको ठीक रूप से निभाता है वही अपने जीवन को सफल बना सकता है।

इन सभी सम्बन्धों को निभाने के लिये पहले यह जानना आवश्यक है कि सबसे अधिक उसे किस बल की जरूरत है। वह बल है विचारों का। फिर हमें यह जानना है कि मनुष्य की अपनी स्वभाविक प्रकृति क्या है? अर्थात् वह चाहता क्या है? तीसरे यह जानना चाहिये कि जीवन को कामयाब बनाने के लिये किन साधनों को प्रयोग में लाना चाहिये। साधनों को जाने बिना मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता। इसके अतिरिक्त हर एक भारतवासी को यह भी देखना है कि उसकी अपनी संस्कृति और सभ्यता उसे किस मार्ग पर चलाती है। क्योंकि किसी उद्देश्य की प्राप्ति ठीक मार्ग पर चलने से ही हो सकती है। हमारी सभ्यता ने जो मार्ग निर्धारित किया है उससे उत्तम मार्ग आज तक कोई नहीं बता सका।

इसके पश्चात् हमें इस बात पर विचार करना है कि अपनी जीवन यात्रा के लिये जो सवारी हमको मिली हुई है उसकी देख-भाल और रक्षा किस प्रकार करनी है। यदि हमारा यान ही ठीक न रहे, तो हम गन्तव्य स्थान पर पहुंचने की आशा किस प्रकार कर सकते हैं? जिस यात्री की सवारी जितनी सुदृढ़ होगी उतनी ही सुगमता से वह अपनी यात्रा समाप्त कर सकेगा।

फिर हमने देखना है कि मनुष्य यदि उन्नति करने लगे तो कितना ऊंचा उठ सकता है और उसमें कौन-कौन से गुण आ जाते हैं ? और यदि अवनति की ओर चले तो पतन से उसका क्या रूप बन जाता है और कौन से दोष उसमें प्रवेश कर जाते हैं। इन्हीं गुणों और दोषों से मनुष्य अपनी अवस्था का अनुभव कर सकता है। आत्म-निरीक्षण अर्थात् अपनी पड़ताल किये बिना मनुष्य अपनी उन्नति और अवनति की जांच ही नहीं कर सकता। जब तक शुभ गुणों की प्रधानता और बहूल्यता न हो तब तक मनुष्य ऊपर नहीं उभर सकता। इसके लिये अपने गुण दोषों का उतार चढ़ाव देखना आवश्यक है।

मनुष्य को एक भूल लगी करती है। वह अपनों को पराये और परायों को अपने समझ लेता है। इससे उसे बड़ा धोखा लगता है। जो वास्तव में अपने होते हैं, उनको परे रखकर और जो सच्चे अर्थों में अपने नहीं होते उनको अपने मान कर उनसे प्रेम करके अपनी बड़ी हानि करता है। इस विषय में भी ठीक ज्ञान का होना आवश्यक है।

एक और बात जो मनुष्य की वृद्धि में बाधक होती है, वह है धन। धन मनुष्य को ऊंचा उठाने में सहायक भी हो सकता है और बाधक भी। यदि धन का ठीक प्रयोग किया जाये तो वह सहायक बनता है और यदि उसका अनुचित प्रयोग हो तो मनुष्य का पतन हो जाता है। इसलिये धन के ठीक प्रयोग करने का ढंग भी ज्ञात होना चाहिये।

वैसे तो और भी अनेक साधन हैं और बहुतेरी बातें हैं, किन्तु यदि उपरोक्त बातों का ज्ञान हो जावे और मनुष्य इनके तत्व को अपने अन्दर धारण कर ले तो उसे अपना कल्याण मार्ग दिखाई दे

सकता है और वह उस पर चल कर अपने ठीक स्थान पर पहुँच सकता है।

इस पुस्तक में इन्हीं नियमों पर कुछ प्रकाश डाला गया है। इनको ध्यान पूर्वक बार-बार पढ़कर इन नियमों को जीवन का अंग बनाया जाये तो जीवन का सुखी बनना अनिवार्य है।

अन्त में यह बात कभी नहीं भुलानी चाहिये कि केवल पुस्तक का पढ़ना या उपदेशों का सुनना मनुष्य को लाभ नहीं पहुंचा सकता, लाभ तो कृत्य अर्थात् अमल से पहुंचाता है। दूसरा आदमी मार्ग बता सकता है किन्तु चलना मनुष्य को स्वयं ही पड़ता है। जो चलेगा वह अपने स्थान पर पहुंच जायेगा। जो मार्ग ही पूछता रहेगा या मार्ग के सम्बन्ध में विवाद या निर्णय करता रहेगा वह तो अपना जीवन ही व्यर्थ नष्ट करेगा। इन नियमों को धारण करो और अमल में लाकर जीवन सफल बनाओ।

फ्रैगरैंस (BXIX/556)
चर्च रोड, सिविल लाईन्ज
लुधियाना-१४१००१

कांशीराम 'चावला'

विचार शक्ति

संसार में सहस्त्रों प्रकार के बल हैं, जैसे बाहु बल, धन बल, जन
ल, राज्य बल, विधान बल और सेना बल इत्यादि। किन्तु इन
मस्त बलों से अधिक एक और बल है, जिसे विचार बल कहते
। विचार शक्ति ही वास्तव में संसार में राज्य करती है। जिसकी
चार शक्ति जितनी बलशाली है उसका जीवन उतना ही अधिक
फल बनता है।

विचार शक्ति के द्वारा ही मनुष्य आदरणीय और सम्मानित
ता है। किन्तु विचारों में शुद्धता होनी चाहिये। विचार शक्ति
व्र तो हो किन्तु उसमें पवित्रता न हो तो वही दुःख का कारण
जाती है। एक विचार संसार का कल्याण कर जाता है और
रा ऊधम मचा देता है। जिन विचारों नें बिजली, टेलीफोन और
यो की उत्पत्ति की वह कितने उत्तम और कल्याणकारी थे
र जिस विचार ने ऐटम बम पैदा किया वह कितना अधर्म और
नकर था।

इतिहास में एक कथा आती है कि दो बहिन भाई अनाथ थे।
की पालना उनका चचा कर रहा था। लड़के के मन में विचार
। कि यदि चचा को मार दिया जाये तो मैं तत्काल उसकी
त्ति का स्वामी बन सकता हूं। एक दिन चचा के रोगी होनें
औषधि पिलाने के बहानें वह चचा को विष पिलाने लगा।
की का भी किसी न किसी प्रकार सूझ पड़ गई। ठीक उस समय
लड़के ने विष भरा गिलास अपने चचा के मुख से लगाया, लड़की
ड़कर हाथ मारा और गिलास पृथिवी पर गिरा दिया। लड़के
कुछ तो अपने कुकर्म के कारण और कुछ असफल रहने से इतनी

लज्जा और उसके मन पर ऐसी चोट लगी कि वह चक्कर खा
गिर गया और हृदय की गति बन्द होने से उसके प्राणों का अन्त
गया। चचा को जब सारी घटना का ज्ञान हुआ तो उसने उसी
अपनी भतीजी को अपनी सारी चल और अचल सम्पत्ति
स्वामिनी बना दिया।

जरा सोचिये कि लड़के के मन में अपने चचा को मारने
खोटा विचार उठने ने क्या परिणाम दिखाया और लड़की के
में अपने चचा को बचाने का शुभ विचार क्या सुन्दर फल ला
संसार में मनुष्य जो भी शुभ या अशुभ कर्म करता है उसका आ
भले या बुरे विचार से ही होता है। शास्त्र कहता है कि म
जैसा सोचता है वैसा बोलता है और जैसा बोलता है वैसा करत
और जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। इसीलिए कहा है
मनुष्य अपने विचारों का पुतला होता है। जैसा वह सोचत
वैसा ही बन जाता है।

शुभ विचार मनुष्य को आदरणीय, यशस्वी, तेजस्वी
प्रतापी बनाते हैं और अशुभ विचार मनुष्य को निन्दित, घृ
दुष्ट और दुःखों का भंडार बनाते हैं। इसलिये ,यदि सुखी
सम्मानित बनना चाहते हो तो अपने विचारों पर कड़ी दृष्टि र
मन्द विचारों को कदापि मन में न आने दो और यदि यदा
आ ही जायें तो उसी समय उन्हें बाहिर निकालकर उनके स्थान
अच्छे विचार भर लो। यही कल्याण का मार्ग है। इसी को अपना
और कल्याण के भागी बनो।

मानव प्रकृति

संसार में कई लोग पशुओं, पक्षियों, कीट पतंगों तथा
जन्तुओं के सम्बन्ध में वर्षों तक खोज करते रहते हैं

इनके स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करके उन्हें सिखाते हैं और उनसे लाभ उठाते हैं। किन्तु अपने अंश को अर्थात् मनुष्य की प्रकृति के सम्बन्ध में उतनी लगन से अनुसन्धान कभी नहीं करते। यदि इस तरफ भी मनुष्यों का ध्यान हो जाता तो आज जो मानव ने दानव का रूप धारण कर लिया है यह अवस्था कभी न आती और इतनी अव्यवस्थता और अशान्ति न होती।

इस विषय पर पूर्ण रूपेण विचार करना तो बहुत से विचारवानों का काम है किन्तु साधारण दृष्टि से देखा जाए तो खाने, पीने, सोने इत्यादि में तो मानव और पशु में विशेष भेद नहीं है, किन्तु कुछ बातों की इस विलक्षणता और उन्हीं बातों का ध्यान रखते हुए मनुष्य को यदि एक शासन में और नियम बद्धता से चलाया जावे तो वह मानव से देव बन सकता है। अब उन विलक्षणताओं का कुछ वर्णन अति संक्षेप रूप से किया जाता है। इससे मानव प्रकृति का ज्ञान हो जायेगा

(१) इच्छा करना—प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ इच्छा करता है। जब तक उसकी इच्छायें एक विशेष सीमा के अन्दर रहती हैं उनसे कुछ बिगाड़ पैदा नहीं होता। किन्तु जब वह सीमा को पार कर जाती हैं अर्थात् मनुष्य अपनी आवश्यकता से अधिक इच्छा करता है और दूसरों की धन सम्पत्ति पर अधिकार स्थापित करना चाहता है तो उसकी वही इच्छायें उसके अपने लिये और समाज के लिये हानिकर बन जाती हैं। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य की इच्छाओं को नियमित, परिमित तथा नियन्त्रित रक्खा जाये, तभी समाज में शान्ति रह सकती है। कल्याण इच्छाओं को घटाने और सीमित रखने में है। सबसे उत्तम इच्छा यह है कि दूसरों के भले में अपना भला समझा जाए।

(२) चेतना—मनुष्य की दूसरी प्रकृति बोध या चेतना करना है

अर्थात् उसे अपने तथा पराए सुख दुःख का अनुभव होता है। इस अनुभव को यदि व्यवस्थित कर दिया जाए तो वह कल्याण का कारण बन सकता है। अर्थात् अपने सुख दुःख अपने हर्ष शोक की अपेक्षा उसे दूसरों के लिये अधिक अनुभव हो तो यही सच्ची मानवता का लक्षण है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करता वह पशु श्रेणी में चला जाता है। सबसे श्रेष्ठ अनुभव यह है कि दूसरों के सुख को अपना सुख माना जाए।

(३) अनुकरण अर्थात् नकल करना—मनुष्य का बच्चा जो कुछ देखता है उसी की नकल उतारने लगता है। इससे पता लगता है कि अनुरूपता मानव-प्रकृति का एक अंग है। इस अंग को भी यदि मर्यादित और नियमित कर दिया जाये तो इससे मनुष्य का व्यक्तिगत रूप से और सामाजिक दृष्टि से बड़ा कल्याण हो सकता है अर्थात् मनुष्य उनकी नकल उतारे जिन्होंने संसार में ख्याति पाई है, संसार को मंगल-प्रद देन दी है और संसार को सुखी बनाने के साधन सोचे और बरते हैं।

(४) भय—भय भी मानव स्वभाव का एक अंग है। इसको भी मर्यादित करने की आवश्यकता है। अर्थात् मनुष्य ऐसी परिस्थितियों से बचे जो भय के उत्पन्न करने वाली हैं। और जो स्वाभाविक रूप से भयजनक परिस्थितियां हैं उनसे सुरक्षित रहने के साधन प्रयोग में लाए। मनुष्य जितना निर्भय बनेगा उतना ही अपनी आत्मा को ऊंचा बनायेगा। यह अटल नियम है।

(५) मैथुन यह भी मनुष्य-स्वभाव का एक भाग है। इसको मर्यादित रखने के लिये और स्वभाव की पूर्ति के लिये एक पुरुष और एक स्त्री को सम्बन्धित करने का नियम बनाया गया है। यदि इस नियम का पालन दृढ़ता पूर्वक किया जाए तो समाज में कोई गड़बड़ पैदा नहीं हो सकती और मानव समाज सुखी बन सकता है।

(६) बौद्धिक शक्ति—संसार की सारी प्रगति और उन्नति का आधार मनुष्य की विचार-शक्ति पर है। यदि मनुष्य की बुद्धि नियन्त्रित रूप से शुद्ध रहे तो इसमें से ऐसी मंगलकारी भावनाएं उठ सकती हैं जो संसार को तथा मानव जीवन को स्वर्गमय बना सकती हैं। इससे विपरीत जगत का नर्क बनना और जीव का विनाश होना अवश्यम्भावी है।

सफल जीवन के साधन

सभी मनुष्य अभिलाषा रखते हैं कि उनका जीवन सफल और सार्थक बने और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे अपना पूरा बल भी लगाते हैं। किन्तु देखने में यही आता है कि बहुत थोड़े ऐसे मनुष्य हैं जो वास्तव में अपने जीवन को सफल बना पाते हैं। इसका कारण यह है कि वे सफलता प्राप्ति के ठीक साधनों का प्रयोग नहीं करते। इसी लिए असफल रहते हैं।

यदि एक पुरुष ने पूर्व की ओर जाना हो किन्तु चल पड़े वह पश्चिम की ओर, तो यद्यपि वह चलने का पुरुषार्थ तो कर रहा है, किन्तु उसका मनोरथ सिद्ध नहीं होगा अर्थात् वह गन्तव्य स्थान पर पहुंच नहीं पाएगा। इसलिये जिन लोगों के मन में अपना जीवन सफल बनाने की कामना है उन्हें कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना होगा। उनमें से कुछ नियमों का थोड़ा सा वर्णन यहां किया जाता है। इस सम्बन्ध में पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिये तो लेखक की महत् रचनाएं "आदर्श मानव तथा मन जीते जग जीत" इत्यादि का स्वाध्याय करना चाहिये।

(१) सबसे प्रथम आवश्यक नियम यह है कि मनुष्य को अपने जीवन का कोई विशेष लक्ष्य या ध्येय बनाना चाहिये। लक्ष्य निर्धारित किये बिना जीवन में अग्रसर होने का उत्साह नहीं होता।

(२) आत्मनिर्भरता—सफल जीवन के ताले की कुंजी आत्मनिर्भरता ही है। आत्मनिर्भरता रखने वाले को ही परमात्मा सहायता मिलती है। जो दूसरों की सहायता की आशा लगाकर बैठा रहता है उसका जीवन-रथ कदापि आगे नहीं बढ़ सकता। जिन वीरों और महापुरुषों ने अपने जीवन सफल बनाए हैं उनका आधार "आत्मनिर्भरता" ही थी। इसलिये यह नियम अत्यावश्यक है। अपने आप पर भरोसा करो।

(३) नियमबद्धता—यह नियम भी विशेष महत्त्व रखता है। सज्जन चार दिन तो अपने कार्य की पूर्ति के लिये पूरा-पूरा बल लगा देंगे। किन्तु फिर दस दिन के लिये ढीले हो जायेंगे। यह पद्धति दोषयुक्त है। सफलता उसी क्रिया में होगी जिसके लिये नियमबद्धता अर्थात् बाकायदगी से प्रयत्न किया जाएगा।

(४) धैर्य—कार्य करने वालों के मार्ग में विघ्न बाधाएं भी आया करती हैं और कभी-कभी असफलता सी भी दीख पड़ती है किन्तु इससे घबराना न चाहिये बल्कि धैर्य से अपना पुरुषार्थ करते चले जाना चाहिये।

(५) ईमानदारी—जिस कार्य में छल कपट का प्रयोग किया जायेगा उसमें प्रथम तो सफलता होती ही नहीं और यदि हो भी तो देर तक टिकने वाली नहीं होती। उसके कई खण्ड सत्वहीन होते हैं और इसलिये वह चिरस्थाई नहीं होते। इसलिये साधन सदैव ऐसे होने चाहियें कि जिनमें बेईमानी का मिश्रण न हो। इस युग के महापुरुष महात्मा गांधी ने तो यहां तक कह दिया कि राजनीति के कामों में भी धर्मयुक्त साधनों का प्रयोग होना चाहिये और कूटनीति से कभी काम न लेना चाहिये।

यदि इन नियमों को ध्यान में रक्खा जाएगा तो जीवन का सफल बन जाना एक निश्चित बात होगी।

भारतीय सभ्यता

प्रत्येक देश को अपनी-अपनी सभ्यता का गौरव होता है और हरेक देश की सभ्यता की कुछ विशेषताएं होती हैं। भारतवर्ष की सभ्यता विलक्षण है और भारतवासियों को इस पर सच्चे अर्थों में गर्व है। न केवल भारतवासी ही अपनी सभ्यता को उत्तम कहते हैं किन्तु जितने भी विदेशी यात्री या विद्वान् इस देश में आए हैं उन सभी ने मुक्तकण्ठ से भारतीय सभ्यता की सराहना की है। यद्यपि यह बात खेद से कहनी पड़ती है कि जिस भारतीय सभ्यता की चीन, ईरान, अरब और यौरूप के लोगों ने इतनी प्रशंसा की है, भारतवासी स्वयं उसको त्याग कर अन्य देशों की सभ्यता का अनुकरण कर रहे हैं और इसी कारण वे दुःखों और विपदाओं के जाल में फंस गये हैं। जब तक भारतवासी अपनी उच्च सभ्यता का अनुसरण न करेंगे उनके क्लेशों की समाप्ति नहीं हो सकती। यह एक निश्चित बात है।

एक समय था कि इस देश में ऋषि लोग खेतों में गिरे हुए अन्न को चुनकर उस पर अपना निर्वाह करते थे और उस अवस्था में रहते हुए इतने उच्च ग्रन्थों की रचना करते थे कि उनकी बुद्धि की तीव्रता की सराहना आज भी की जा रही है। और उन ग्रन्थों के टक्कर की रचनाएं आज तक फिर नहीं हो सकीं। एक समय था कि जब राजा लोग अपना हाथ ऊंचा करके कह सकते थे कि हमारे राज्य में न कोई चोर है, न ज्वारी और न ही कोई व्यभिचारी पुरुष है तो भला व्यभिचारिणी नारी की तो बात ही क्या कही जा सकती है। उसी सभ्यता और संस्कृति में पले हुए नवयुवक अपने पिता के आदेश से राज्य तक को ठुकरा कर बनवास करना स्वीकार कर लेते थे।

हमारी सभ्यता की जो विशेष बातें हैं उनका कुछ वर्णन यहां किया जाता है:—

(१) आप जियो और दूसरों को जीने दो—इस नियम पर संसार भर की शान्ति की निर्भरता है। यदि सभी देश इस नियम को अपना लें तो जो महा अशान्ति इस समय संसार में फैल रही है उसकी समाप्ति हो सकती है और नित्य नये होने वाले युद्धों का भय भी दूर हो सकता है।

(२) दूसरों के साथ वही सलूक करो जो तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें—यह हमारी सभ्यता का दूसरा नियम है। इसको अपनाने से ही परिवारों और जातियों के परस्पर के झगड़े खत्म हो सकते हैं।

(३) प्राणीमात्र में अपनी आत्मा के दर्शन करो - यदि यह सिद्धान्त हमारी बुद्धि में स्थिर हो जाए तो किसी को हानि या दुःख पहुंचाने का भाव ही हमारे हृदय में नहीं उठ सकता। अपितु सबको सुख पहुंचाने की धारणा बनी रह सकती है और अपना सुख उनके सुख में देखा जा सकता है।

(४) स्वार्थ त्याग कर सेवा को परम धर्म जानो—स्वार्थ के वश होकर ही आज का मनुष्य लोभ में अन्धा हो रहा है। हमारे देश की सभ्यता की नींव ही त्याग और तपस्या है। सेवाधर्म को उच्चतम माना गया है।

(५) सादगी—खान-पान, रहन-सहन में सादगी से काम लेना हमारी सभ्यता का मुख्य अंग रहा है। भोग-विलास के जीवन को निन्दित समझा गया है। सादा जीवन से ही आचार ठीक रह सकता है। आज की फैशनबाजी ने हमारा आचरण बिगाड़ दिया है। सादा जीवन ही मनुष्य को काम और लोभ जैसे घोर शत्रुओं से सुरक्षित रख सकता है।

इसलिये हे भारतवासियो! आओ हम अपनी सभ्यता के इन सुनहरी सिद्धान्तों को अपने जीवन का अंग बनाकर स्वयं सुखी हों और पूर्वजों की यह पवित्र मान्यता धारण करें कि "दूसरों के

सुख में अपना सुख समझो, दूसरों को खिला कर खाओ, अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को घटाओ।" तभी हमारा कल्याण हो सकता है।

हमारा जीवन रथ

जब कोई पुरुष यात्रा पर जाने के लिये तैयार होता है तो अपने रथ और गाड़ी का निरीक्षण करके अपनी तसल्ली (सन्तुष्टि) कर लेता है, कि जिस यान पर चढ़कर जाना है उसमें कोई दोष तो नहीं है और क्या वह ऐसी अच्छी अवस्था में है कि गन्तव्य स्थान पर पहुंचा देगा और रास्ते में बिगड़ या टूट तो नहीं जाएगा ? जो यात्री अपनी सवारी को देखभाल नहीं करता वह दुःख भी उठाता है और मूर्ख भी समझा जाता है।

हम सबको भी अपनी जीवनयात्रा के लिये एक रथ मिला हुआ है और वह है हमारा शरीर। क्या हम अपने इस जीवन-रथ का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं ? और इसकी देख-भाल और सम्भाल इस विचार से करते हैं कि हमारी जीवनयात्रा की समाप्ति तक यह ठीक काम देता रहेगा ? यदि नहीं तो हम भी उपरोक्त यात्री के तुल्य दुःख भी उठावेंगे और मूर्ख की पदवी भी पावेंगे। इसलिये हमें इस शरीर की रक्षा के लिये निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये।

१—प्रातःकाल सूर्य उदय होने से पूर्व उठना चाहिये।

२—नित्यप्रति शौचादि से निवृत्त होकर न्यून से न्यून आधा घण्टा के लिए व्यायाम करना चाहिये।

३—नित्यप्रति ताजे जल से स्नान करना बड़ा लाभप्रद है। शरीर को खूब मलना चाहिये।

४—जहां तक हो सके, शुद्ध वायु का सेवन करना चाहिये। बन्द कमरों में नहीं बैठना चाहिये।

५—समय-समय पर शरीर पर तेल की मालिश करनी उचित है। तेल सरसों का अच्छा रहता है।

६—प्रातः निहार मुख बासी पानी का एक गिलास पीने से बद्धकोष्ठ अर्थात् कब्ज नहीं होता।

७—भोजन सादा और भूख से कम खाना चाहिये। जिस पदार्थ के खाने से पेट में गड़बड़ हो वह न खाया जाए। भोजन भली-भांति चबा कर खायें।

८—छः घण्टे से कम और ८ घण्टे से अधिक निद्रा न ली जाए। कमरे की खिड़कियां खुली रहें।

९—मादक द्रव्यों का सेवन न किया जाए।

१०—दांतों को नित्य साफ किया जाए।

११—तंग वस्त्र न पहने जायें।

१२—शाक सब्जी का अधिक प्रयोग किया जाए।

१३—छाछ या लस्सी का प्रयोग उदर विकारों को दूर करके दीर्घ आयु प्रदान करता है।

१४—दूध सर्वोत्तम भोजन है। मक्खन और मलाई थोड़ी मात्रा में लाभ देती हैं।

१५—श्वांस नाक से लेना चाहिये। सोते समय मुख नहीं ढकना चाहिये।

१६—खाद्य पदार्थं सदा ढक कर रखने चाहियें।

१७—झुक कर न बैठो, न खड़े हो, न चलो। शरीर को सीधा रक्खो। छाती आगे निकली रहे।

१८—मैले वस्त्र न पहनो। घर भी साफ रहे।

१९—किसी का बरता हुआ कंघा, साबुन, तोलिया, हजामत का उस्तरा, दांतों का ब्रुश प्रयोग में न लाओ।

२०—खाने के साथ अधिक जल का प्रयोग न करो, बल्कि खाने के एक घण्टा पीछे जलपान करो।

इन नियमों का पालन करने से जीवन-रथ ठीक रहेगा और हम अपनी यात्रा सुख-पूर्वक पूरी कर सकेंगे। शरीर के निरोग रहने से ही हम इस संसार के काम भी सुष्टु रूप से कर सकते हैं और परलोक-सुधार के साधन भी क्रिया रूप में ला सकते हैं। जो लोग मानव शरीर की निन्दा करते हुए इसकी ओर से असावधान रहते हैं, वे पाप के भागी बनते हैं।

चार प्रकार के मनुष्य

यदि यह प्रश्न किया जाए कि मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं तो इसके कई उत्तर मिलेंगे। कोई कहेगा गोरे और काले। किसी का उत्तर होगा नाटे और लम्बे। कोई बतलाएगा पतले और मोटे, किसी का कथन होगा धनी और निर्धन। मनुष्य जाति के यह भेद ठीक हैं किन्तु जो किस्में हमने बतानी हैं वे इनसे भिन्न हैं। उस दृष्टि से मनुष्य को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। अर्थात् (१) शैतान, (२) हैवान, (३) इन्सान, (४) भगवान्।

हाथ-पांव और नाक-कान की बनावट से तो मनुष्यों में अधिक भेद नहीं होता। प्रायः सभी दो हाथों, दो पैरों और दो आंखों वाले हैं। किन्तु उपरोक्त दृष्टिकोण से उनमें आकाश पाताल का अन्तर होता है। चारों प्रकार के मनुष्यों का कुछ विवरण नीचे किया जाता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी भावनाओं और कृत्यों पर दृष्टिपात करके जांच करनी चाहिये कि उसकी गिनती किस श्रेणी में आती है। यदि उच्चतम 'भगवान् श्रेणी' में मनुष्य नहीं पहुंच सकता तो कम से कम नीचे की दोनों श्रेणियों से तो उसे बाहर निकलना चाहिये। अब ऊपर कहे गये चारों प्रकार के मनुष्यों का वर्णन किया जाता है।

(१) शैतान—जिनको दूसरों को दुःख देने और उनको हानि पहुंचाने में सुख प्रतीत होता है। जो चूहे, टिड्डी और दीमक के

तुल्य अपना लाभ न होने पर भी दूसरों को हानि करते हैं। जो दूसरों को दुःखी देखकर प्रसन्न होते हैं। वे इस श्रेणी में आते हैं।

(२) हैवान—इस श्रेणी में वे लोग आते हैं जो अपना हिताहित नहीं सोच सकते, जो भलाई और बुराई में भेद करना नहीं जानते। जो अपना लाभ और दूसरों की हानि करने के लिये तत्पर हो जाते हैं। जो अपने थोड़े से लाभ के लिये दूसरों का बड़े से बड़ा नुकसान करने में भी संकोच नहीं करते। जिनके सम्मुख सदा स्वार्थ ही रहता है। परार्थ और परमार्थ का उन्हें कभी ध्यान तक नहीं आता। जो अपने आपको वश में नहीं रख सकते। काम, क्रोध और लोभ के वशीभूत होकर अपने जीवन का नाश करते हैं।

(३) इन्सान—इस गणना में वे लोग आते हैं, जो अपना भी लाभ करते हैं और दूसरों की भलाई में भी अपना तन, मन और धन लगाते हैं। जो अपनी भावनाओं को पवित्र बनाने की चेष्टा करते हैं। जो अच्छे धन्धों से अपनी जीविका कमाते हैं। जो सब प्रकार के पाप कर्मों से दूर रहकर शुभ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। जो दूसरों के दुःख को अनुभव करके उसके निवारण करने का यत्न करते हैं। जो अपने मन और अपनी आत्मा को निर्मल बनाने के लिये ईश्वर-भक्ति, शुभ कर्म और निर्मल ज्ञान के साधन बरतते हैं।

(४) भगवान् —इस उच्चतम तथा परमोत्तम श्रेणी में वे लोग आते हैं जो अपने भले का विचार न करते हुए प्रत्येक अवस्था में दूसरों की भलाई करने में ही प्रवृत्त होते हैं, दूसरों से हानि पहुंचने पर भी उनका भला करते हैं, दूसरों पर उपकार करके प्रति उपकार की आशा नहीं रखते, जिनका-जीवन ध्येय ही सेवा और परोपकार होता है और जो हर समय सबकी भलाई सोचते हैं।

अब आप देखें कि आप किस श्रेणी में आते हैं और ऊंचा उठाने का यत्न करें।

अपने और पराये

प्रत्येक मनुष्य के हृदय में दो भावनाएं विद्यमान रहती हैं अर्थात् "राग और द्वेष"। मनुष्य राग या प्रीति उनसे करता है जिनको वह अपना समझता है और द्वेष उनके साथ करता है जिन को वह विरोधी या पराया जानता है। किन्तु देखने में आता है कि बहुत से लोग अपने और पराये का भेद करने में बड़ी भारी भूल कर जाते हैं।

कई लोग अपनी बेसमझी से उन मनुष्यों को अपना समझते हैं जो उनकी प्रशंसा और खुशामद करते हैं और उन लोगों को पराया जानते हैं जो उनकी निन्दा करते हैं। किन्तु यदि दीर्घ-दृष्टि से देखा जाए तो सत्यता इसके विपरीत है। वास्तव में खुशामदी आदमी बहुत हानिकर होता है, क्योंकि वह उन गुणों का वर्णन करता है जो असल में मनुष्य में होते नहीं और इसी कारण खुशामद करावे वाले मनुष्य को झूठा अभिमान हो जाता है और यह झूठा अभिमान उसके पतन का कारण बनता है। हाकिम और न्यायाधीश लोग प्रायः खुशामदियों के चंगुल में फसकर न्यायपथ से गिर जाते हैं जिससे समाज की बड़ी हानि होती है।

दूसरी ओर यद्यपि निन्दा करने वालों को बुरा समझा जाता है किन्तु वास्तव में वे मनुष्य के सच्चे हितैषी होते हैं, क्योंकि उनसे मनुष्य को अपनी निर्बलताओं और न्यूनताओं का ज्ञान हो जाता है और विचारवान् पुरुष उन पर ध्यान देकर अपना सुधार कर सकता है। हो सकता है कि निन्दा करने वाले पुरुष के भाव अच्छे न हों तो उस अवस्था में हमें उर्दू के प्रसिद्ध कवि ज़ौक का कथन स्मरण रखना चाहिये। उसने कहा है :—

जो तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ ज़ौक।
वही बुरा है जो तुझे बुरा जानता है॥

और अगर तू ही बुरा है तो वह सच कहता है।
क्यों उसके बुरा कहने से तू बुरा मानता है॥

एक विद्वान् का कथन है कि तेरा सच्चा हितैषी वही है जो तुझे सावधान करे कि जिस मार्ग पर तू चल रहा है उसमें कौन-कौन से कांटे हैं। कटु औषधि पीने में तो बुरी लगती है किन्तु रोग-निवृत्ति के लिये लाभदायक होती है। कहा है:—

बुरे लगत सिख के वचन यह विचारो आप।
कड़वी औषध के बिना मिटे न तन का ताप॥

खुशामदी लोगों की झूठी प्रशंसा तो उस मिसरी के तुल्य होती है जिसके अन्दर विष लिपटा हुआ हो। इस लिये मनुष्य को बड़ा सावधान रहकर अपनों और परायों की जांच करनी चाहिये।

माता-पिता अपनी सन्तान के सुधार के लिये उनको कड़वी बातें कहते हैं। जो विचारशील बच्चे होते हैं वे अपने माता-पिता के शिक्षाप्रद कड़वे शब्दों को बुरा न मान कर उन पर ध्यान देते हैं। माता-पिता तो दर्पण के समान होते हैं। जिस प्रकार दर्पण हमारे सन्मुख होकर हमारे मुख के गुणों और दोषों को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है, उसी प्रकार माता-पिता भी अपने बच्चों के गुण और दोष निःस्संकोचता से प्रकट कर देते हैं। माता-पिता को सदैव यह अभिलाषा होती है कि उनके बच्चे यशस्वी और कीर्तिवान् बनें, क्योंकि इससे उनकी अपनी भी बड़ाई होती है।

इसके अतिरिक्त हमारे अपने अन्तस्थल में हमारे कुछ विरोधी छिपे रहते हैं और वे हैं "हमारे खोटे विचार" जो हानि इनसे होती है और किसी प्रकार नहीं होती। इनसे अवश्य बचना चाहिये।

धन का प्रयोग

संसार के सभी कामों को चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती है। धनवान् पुरुष अपनी सब आवश्यकताएं और इच्छाएं सहज से ही पूरी कर सकता है। किन्तु निर्धन पुरुष को अपनी सब इच्छाएं दबानी पड़ती हैं और धनवानों को अपना जीवन सुख से व्यतीत करते हुए देखकर वह मन ही मन में जलता है। इसीलिये धन कमाना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

धन वाले के सभी मित्र बनते हैं। उसका सम्मान करते हैं। किन्तु निर्धन की कोई बात तक नहीं पूछता। इसी लिये कहा है:—

धनवन्ती के कांटा लगा दौड़े लोग हजार।
निर्धन गिरा पहाड़ से कोई न आया यार॥

धन का होना मनुष्य के लिये उतना ही आवश्यक है जितना पक्षी के लिये पंखों का। जिस प्रकार पंखहीन पक्षी विवश होता है, ऐसे ही दरिद्र मनुष्य भी सामर्थ्यहीन होता है। संसार में जितनी सहायता धन कर सकता है उतनी कोई और व्यक्ति नहीं कर सकता। इसीलिये धन को सम्बोधित करते हुए कहा है कि "हे धन, तू परमेश्वर तो नहीं किन्तु वह कौन सी क्रिया है जो तेरी सहायता से नहीं हो सकती है। बड़े से बड़े दोष और बड़े से बड़े अपराध तेरी सहायता से छुप जाते हैं, और बड़ी से बड़ी आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं।"

यह सब कुछ सत्य है किन्तु यदि एक मनुष्य केवल धनसंग्रह में ही लगा रहता है, रात-दिन उसी की चिन्ता में ग्रस्त और व्यस्त रहता है, किसी दूसरी ओर ध्यान ही नहीं देता, धन का संचार ही करता चला जाता है, उसे न अपने लिये व्यय करता है और न औरों के लिये, तो वही धन उसके लिये दुःखों का कारण बनता है।

अतः जहां धन का कमाना आवश्यक है और बिना परिश्रम

और अगर तू ही बुरा है तो वह सच कहता है।
क्यों उसके बुरा कहने से तू बुरा मानता है।।

एक विद्वान् का कथन है कि तेरा सच्चा हितैषी वही है जो तुझे सावधान करे कि जिस मार्ग पर तू चल रहा है उसमें कौन-कौन से कांटे हैं। कटु औषधि पीने में तो बुरी लगती है किन्तु रोग-निवृत्ति के लिये लाभदायक होती है। कहा है:—

बुरे लगत सिख के वचन यह विचारो आप।
कड़वी औषध के बिना मिटे न तन का ताप।।

खुशामदी लोगों की झूठी प्रशंसा तो उस मिसरी के तुल्य होती है जिसके अन्दर विष लिपटा हुआ हो। इस लिये मनुष्य को बड़ा सावधान रहकर अपनों और परायों की जांच करनी चाहिये।

माता-पिता अपनी सन्तान के सुधार के लिये उनको कड़वी बातें कहते हैं। जो विचारशील बच्चे होते हैं वे अपने माता-पिता के शिक्षाप्रद कड़वे शब्दों को बुरा न मान कर उन पर ध्यान देते हैं। माता-पिता तो दर्पण के समान होते हैं। जिस प्रकार दर्पण हमारे सन्मुख होकर हमारे मुख के गुणों और दोषों को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है, उसी प्रकार माता-पिता भी अपने बच्चों के गुण और दोष निःसंकोचता से प्रकट कर देते हैं। माता-पिता को सदैव यह अभिलाषा होती है कि उनके बच्चे यशस्वी और कीर्तिवान् बनें, क्योंकि इससे उनकी अपनी भी बड़ाई होती है।

इसके अतिरिक्त हमारे अपने अन्तस्थल में हमारे कुछ विरोधी छिपे रहते हैं और वे हैं "हमारे खोटे विचार" जो हानि इनसे होती है और किसी प्रकार नहीं होती। इनसे अवश्य बचना चाहिये।

धन का प्रयोग

संसार के सभी कामों को चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती है। धनवान् पुरुष अपनी सब आवश्यकताएं और इच्छाएं सहज से ही पूरी कर सकता है। किन्तु निर्धन पुरुष को अपनी सब इच्छाएं दबानी पड़ती हैं और धनवानों को अपना जीवन सुख से व्यतीत करते हुए देखकर वह मन ही मन में जलता है। इसीलिये धन कमाना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

धन वाले के सभी मित्र बनते हैं। उसका सम्मान करते हैं। किन्तु निर्धन की कोई बात तक नहीं पूछता। इसी लिये कहा है:—

धनवन्ती के कांटा लगा दौड़े लोग हजार।
निर्धन गिरा पहाड़ से कोई न आया यार॥

धन का होना मनुष्य के लिये उतना ही आवश्यक है जितना पक्षी के लिये पंखों का। जिस प्रकार पंखहीन पक्षी विवश होता है, ऐसे ही दरिद्र मनुष्य भी सामर्थ्यहीन होता है। संसार में जितनी सहायता धन कर सकता है उतनी कोई और व्यक्ति नहीं कर सकता। इसीलिये धन को सम्बोधित करते हुए कहा है कि "हे धन, तू परमेश्वर तो नहीं किन्तु वह कौन सी क्रिया है जो तेरी सहायता से नहीं हो सकती है। बड़े से बड़े दोष और बड़े से बड़े अपराध तेरी सहायता से छुप जाते हैं, और बड़ी से बड़ी आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं।"

यह सब कुछ सत्य है किन्तु यदि एक मनुष्य केवल धनसंग्रह में ही लगा रहता है, रात-दिन उसी की चिन्ता में ग्रस्त और व्यस्त रहता है, किसी दूसरी ओर ध्यान ही नहीं देता, धन का संचार ही करता चला जाता है, उसे न अपने लिये व्यय करता है और न औरों के लिये, तो वही धन उसके लिये दुःखों का कारण बनता है।

अतः जहां धन का कमाना आवश्यक है और बिना परिश्रम

किये दूसरों के सहारे पर जीना पाप और नीचता है वहां यह बात भी आवश्यक है कि मनुष्य धन कमा कर उसका सदुपयोग करे। धन कमाने में इस नियम को भी न भूलना चाहिये कि धन किसी अच्छे धन्धे के द्वारा ईमानदारी से कमाया जाए और फिर उसे बन्द करके न रखा जावे। उसका ठीक उपयोग किया जाए।

जो लोग अधिक और अनुचित लाभ का दर(ब्याज या सूद)लेकर या चोर बाजार के द्वारा या दूसरे का अधिकार अपहरण करके या रिश्वत या घूंस लेकर धन कमाते हैं वे एक ओर तो देश और समाज के शत्रु बनते हैं और दूसरी ओर अपनी आत्मा को काला करके अपना परलोक बिगाड़ते हैं।

जो लोग केवल अपनी तिजोरी भरने या बैंकों में अपने धन के आंकड़े बढ़ाने में ही लगे रहते हैं और इस धुन में न अपने स्वास्थ्य का ध्यान करते हैं और न धर्म ईमान का और न उन्हें अपना हिता-हित सूझता है और न परलोक का विचार आता है, उन लोगों के लिये तो धन एक दुःखदाई वस्तु बन जाती है।

कई लोग धन के मद में दूसरों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते हैं। इससे भी वे अपने और समाज के शत्रु बनते हैं। इस लिये मनुष्य को उचित है कि वह धन अवश्य कमाए किन्तु धन्धा निर्दोष हो और धन का अहंकार कभी न करे और न ही धन को बन्द करके रखे अपितु अपने लिये, अपने सम्बन्धियों के लिए और परोपकार के लिये व्यय करे।

बोलने का ढंग

यदि हम उन लड़ाई-झगड़ों के कारणों की खोज करें जो हमारे इधर-उधर नित्य-प्रति होते हैं, तो पता चलेगा कि उनमें से ९० प्रतिशत बोलने की असावधानी से होते हैं। प्रायः देखा गया है कि

जो लोग बोलने का ठीक ढंग जानते हैं, वे न बनने वाले काम भी बना लेते हैं। और जिन्हें बोलने का ढंग नहीं आता, वे बनते काम भी बिगाड़ लेते हैं।

योरोप में एक स्थान पर दो संस्थाएं खुलने वाली थीं। उनके लिये धन की आवश्यकता थी। दोनों के संचालक एक सेठ के पास पहुंचे और धन की सहायता मांगी। एक ने इस प्रकार कहा, "हमें धन की आवश्यकता है, आपने खूब धन कमाया है, उसमें से हमें भी भाग मिलना चाहिये। आपके नाम का पत्थर लगा दिया जाएगा।" सेठ ने कहा सोच कर उत्तर दूंगा। दूसरे आदमी ने जाकर उसी सेठ को इस प्रकार कहा—"हमने अपनी संस्था के द्वारा भले पुरुषों की प्रसिद्धि कराने के सम्बन्ध में कई धनवान् पुरुषों के नाम सोचे हैं, किन्तु आप से अच्छा कोई नाम नहीं सूझा। आपका आचरण बहुत ऊंचा है। जब हमारी संस्था के द्वारा किसी की प्रसिद्धि होनी ही है, तो आप जैसे उच्च आचरण वाले सज्जन की क्यों न हो।" इन शब्दों के सुनते ही सेठ ने एक लाख रुपये का चैक काट कर तत्काल उस पुरुष के हाथ में दे दिया और पहले आदमी को लिख भेजा कि क्योंकि हम एक दूसरी संस्था को सहायता दे चुके हैं इस लिये आपसे क्षमा चाहते हैं।

इसी प्रकार के और बीसियों उदाहरण दिये जा सकते हैं। कई नवयुवक जो हर प्रकार से किसी पदवी के लिये योग्य होते हैं केवल बोलने की असावधानी से अवसर खो बैठते हैं। घरों में पति-पत्नी का, सास-बहू का और बाजार में दुकानदार और ग्राहक का झगड़ा प्रायः ठीक तौर पर न बोलने के कारण ही होता देखा जाता है। असावधानी से बोलने वाला मनुष्य प्रायः जीवन में असफल रहता है। मित्र बनाने के स्थान में शत्रु बनाता है और घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

एक विचारवान् पुरुष का कथन है कि जो मनुष्य अपनी जिह्वा

को वश में रख सकता है, वह अपने सारे अंगों पर काबू पा सकता है। जैसे वैद्य और डाक्टर लोग रोगी की जिह्वा देख कर उसके रोग की परीक्षा कर लेते हैं उसी प्रकार विचारवान पुरुष एक मनुष्य की जिह्वा खुलवाकर अर्थात् उसे बुलवाकर उसके मन की अवस्था जान लेते हैं।

बोलने के विषय में यह नियम याद रक्खो कि बुद्धिमान पुरुष तो इसलिये बोलता है कि उसको बोलने की आवश्यकता होती है, किन्तु मूर्ख इसलिये बोलता है कि उसे बोलने की इच्छा होती है। सच तो यह है कि मनुष्य की उन्नति और अवनति, उसके बोलने पर निर्भर होती है। अस्त्र-शस्त्रधारी मनुष्य की शत्रुता से उतना भय नहीं होता जितना कर्कश बोलने वाले पुरुष से होता है।

इसलिये यदि सुखी रहना चाहते हो तो बोलने के सम्बन्ध में इन बातों का ध्यान रक्खो।

सोचकर बोलो, थोड़ा बोलो, समय और स्थान के अनुसार बोलो, उलाहना और चिड़ाने वाली बात न बोलो, जहां बोलने की कदर न हो वहां चुप रहो, बोलते समय यह भी ध्यान रक्खो कि किस से बोल रहे हो और किसके विषय में बोल रहे हो। यह बात भी न भूल जाओ कि बहुत बोलने से विचार शक्ति घट जाती है। एक घड़ी में मिनट की सूई बारह निशान पार करके एक घण्टा प्रगट करती है, किन्तु घण्टे वाली सूई केवल एक निशान चलकर उतना ही समय बतलाती है। इसीलिये थोड़ा और सार-गर्भित बोलो।

सफलता के साधन

१—जीवन का एक लक्ष्य बनाकर सामने रखो।
२—परिश्रम तथा साहस में कभी ढील न करो।
३—विघ्न बाधाओं से भयभीत न हो। डटे रहो।
४—निराशा को पास न आने दो।

५—असफलता सफलता की सीढ़ी होती है।

६—अपने काम को पूरी तन्मयता से करो।

७—आत्मविश्वासी बनो। दूसरों से आशा न रखो।

८—अपने पुरुषार्थ के साथ प्रभु पर विश्वास रखो।

हमारा वर्तमान कर्त्तव्य

१—देश की स्वतन्त्रता को स्थिर रखने का भाव हो।

२—अपने स्वार्थ को छोड़ें, त्याग भाव हो।

३—क्षुद्र भावों का त्याग करके उदार बनें।

४—आपस की फूट, लड़ाई-झगड़ा बन्द करें।

५—धर्म के नाम पर झगड़े न करें। धर्म प्रेम सिखाता है।

६—वैर, विरोध, शत्रुता, घृणा करना पाप जानें।

७—देश की सेवा के लिये त्यागभाव रखें।

८—लोक सेवा को परम धर्म जानें।

९—झूट, बेईमानी, छल, छोड़कर सद्व्यवहारी बनें।

१०—नारी जाति का सम्मान करें। उसे मातृ-शक्ति जानें।

११—विषय विलासता छोड़कर सदाचारी बनें।

१२—लोभ को पाप का बाप जानें। सन्तोषी बनें।

१३—कोई ऐसा कर्म न करें जिससे अपनी या देश की अकीर्ति हो। कीर्ति प्राप्त करें।

१४—अपने गुणों का अभिमान न करें। नम्र बनें।

१५—कर्तव्य पालन में और नियम पालन में दृढ़ रहें।

१६—पाप की कमाई के निकट न जायें।

१७—आहार, विचार, व्यवहार और आचार शुद्ध हों।

श्रीमती सुलखनी देवी महाजन धर्मार्थ ट्रस्ट

M/10, लाजपत नगर III, नई दिल्ली-२४

सुलखनी देवी महाजन धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना जुलाई १९६८ में डाक्टर विद्याधर महाजन, एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट, लाजपतनगर, नई दिल्ली ने अपनी पूज्य माताजी की पुण्य स्मृति में की और अपना निवास स्थान III-M/१०, लाजपत नगर, नई दिल्ली ट्रस्ट को दान में दे दिया। इसके अतिरिक्त ट्रस्ट के काम को सुचारु रूप से चलाने के लिए धन का प्रबन्ध कर दिया। ट्रस्ट का उद्देश्य देश की हर प्रकार से भलाई करना है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ट्रस्ट ने निम्नलिखित पुस्तकें मुफ्त बांटने के लिए छापी हैं:—

संध्या तथा हवन मन्त्र। वैदिक सन्ध्या। देश-भक्ति के गीत। ईश्वर-भक्ति के गीत। वैदिक भजनावली। चुने हुए फूल और दोहे। आनन्द स्तोत्र। वन्दना। मां। उन्नति का मार्ग। दैनिक योग आसन। देश भक्ति के गीत। आदर्श जीवन कथाएं। राजस्थान का गौरव। प्रभु-भक्ति का मार्ग। हमारी जीवन यात्रा। महर्षि दयानन्द सरस्वती। दयानन्द के उपकार। विद्यार्थी जीवन। अच्छे स्वास्थ्य के लिये कुछ उपयोगी बातें। दांतों की सुरक्षा। मनुष्य स्वस्थ कैसे रह सकता है। दैनिक रोगों की सरल चिकित्सा। रोगी परिचर्या। आहार और फल। ब्रह्मचर्य का महत्त्व। सुखी तथा सफल जीवन। लाख-लाख की एक बात। आदर्श गृहस्थ जीवन। मानव और उसका मन। ब्रह्मचर्य ही जीवन है। निराला भारत। स्वतन्त्र भारत में हमारा कर्त्तव्य। बुढ़ापा कैसे बितायें? मुस्करा के जियो।

सार्वदेशिक प्रेस, नई दिल्ली-१